गांधी नेहरु जैसे सरकारी ब्रांड की असलियत तो जानिए

भारत में गाँधी-नेहरू के राजकीय प्रचार में सालाना करोड़ों रूपए खर्च होते रहे। अब अटल-दीनदयाल पर वही हो रहा है। दिवंगत जनसंघ नेता के नाम से इधर विश्वविद्यालयो में विद्वत-कुर्सियाँ घोषित की गईं। उन के नाम दर्जनों सड़कें, भवन, योजनाएं, अस्पताल, विश्वविद्यालय, आदि पहले ही बनाए जा चुके हैं। यह सब क्या है ? एक तो राज-कोष से पार्टी नेताओं का प्रचार अनुचित है। दूसरे, यदि चिंतन और शिक्षा के क्षेत्र में भी पार्टी पुरुषों को ही जमाया जाएगा – तब श्रीअरविन्द, कुमारस्वामी, श्रद्धानन्द, सावरकर, जदुनाथ सरकार, कृष्णमूर्ति, निराला, क. मा. मुंशी, अज्ञेय, राम स्वरूप, सीताराम गोयल, गुरुदत्त, जैसे ज्ञानियों के नाम पर क्या होगा ? यदि हम स्वाभिमानी देश होना चाहते हैं, तो बचकानापन छोड़ें। सामान्य पार्टी नेताओं को महान चिंतक, ऋषि, आदि घोषित करने से देश का गौरव नहीं बढ़ता। उस पार्टी का भी बढ़ा हो, इसमें संदेह है।

गाँधी-नेहरू भी हम पर सरकारी प्रचार से थोपे हुए महान हैं। उन के प्रति हमारी स्थिति लेनिन-स्तालिन के प्रति दशकों तक रूसी जनता वाली है। अहर्निश प्रचार हमारी चेतना पर सवार रहता है। सचाई से तय करने का अवसर ही नहीं दिया गया कि राजनीतिज्ञ और चिंतक, दोनों रूपों में गाँधी नेहरू सचमुच कितने पानी में थे। उन के बारे में हर असुविधाजनक बात सत्ता-तंत्र और पत्र-पत्रिकाएं भी दबाती रही हैं।

गाँधी-नेहरू पर वह सब भी पूरी तरह छिपा दिया गया जो उन के समकालीन महापुरुषों ने देखा था। गाँधी की राजनीतिक समझ और आचरण पर बड़े लोगों, निकट सहयोगियों ने कठोर बातें कहीं थीं। नेहरू भी न प्रधानमंत्री पद के लिए योग्यतम थे, न कांग्रेस की पसंद। कांग्रेस कार्यसमिति में नेहरू तीसरी पसंद थे, कृपलानी से भी पीछे ! इसीलिए नेहरू के प्रधानमंत्री बनने के बाद भी सरदार पटेल का ही अधिक मान था। इतना कि नेहरू कांग्रेस से अलग होने की सोचने लगे थे। पर दिसंबर 1950 में पटेल के आकस्मिक निधन ने उन का रास्ता साफ कर दिया।

ऐसे अनगिन तथ्य दबाकर गाँधी-नेहरू की महानता फैलाई गई। वास्तविक मूल्यांकन में स्वयं गाँधी की छवि विफल नेता तथा मामूली विचारक, बल्कि कई विषयों में हास्यास्पद उभरती है। जैसे, अहिंसा और ब्रह्मचर्य, अपने ही दो केंद्रीय सिद्धातों पर गाँधी के विचार बचकाने थे। व्यवहार में भी भारतीय राजनीति में प्रवेश से लेकर अंत तक सभी कार्यों, विचारों को परखें, तो गाँधी के लगभग सभी अभियान विफल या प्रतिकूल रहे।

लगभग पचास वर्ष की परिपक्व आयु तक खुद को गर्व से 'राज-भक्त' कहना, यानी भारत पर ब्रिटिश राज का समर्थन ; 'अहिंसा' की भरपूर विरुदावली गा लेने के बाद प्रथम विश्व-युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए सैनिकों की भर्ती कराना ; इस के लिए 'ब्रिटिश साम्राज्य के वफादार सेवक' का ईनाम पाना ; तुर्की के इस्लामी खलीफा के लिए 'गाँधी-खलीफत एक्सप्रेस' चलाना ; फलतः देश भर में एकतरफा मुस्लिम हिंसा का कहर ; 1931 का खोखला गाँधी-इरविन पैक्ट ; मुस्लिम लीग की विभाजक राजनीति के समक्ष सदा निरुपाय ; 1942 का कुसमय 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ना ; भारत अविभाजित रहने के लिए 1946 में क्रिप्स-प्रस्ताव ठुकराना ; 'विभाजन मेरी लाश पर होगा' की अपनी घोषणा से पलटने का विश्वासघात ; और, 'जब मैं नहीं रहूँगा तब जवाहर मेरी भाषा बोलेगा' जैसे वक्तव्य, जिन की सचाई उसी समय संदिग्ध थी ! ये उदाहरण गाँधी के राजनीतिक कैरियर को भयंकर गलतियों और विफलताओं की अटूट कड़ी दिखाते हैं।

उन में कुछ विफलताएं तो ऐसी जिन से लाखों निरीह भारतीयों की बलि चढ़ गई। बदले में मिला तो यही, कि चारों ओर शत्रु-देशों की घेराबंदी हो गई जो इतिहास में कभी न थी। चाणक्य के समय से भारत को केवल उत्तर-पश्चिम से सावधान रहने की जरूरत रही थी। मगर 1947 में भारत-विभाजन कर अपनी ही भूमि से तोड़कर दो तरफ मुस्लिम शत्रु-देश बना लेने, तथा नेहरू द्वारा तिब्बत रूपी मध्यवर्ती (बफर) देश चीन के हवाले कर देने से भारत की पश्चिमी, उत्तरी और पूर्वी तीनों सीमाएं शत्रुओं से घिर गईं ! यह किसकी देन है ?

पहले से यह सब न देख सकने वाला साधारण भोला-भाला हो सकता है। राजनीति व इतिहास की मामूली समझ रखने वाले नेता भी देश की सीमाओं का मामला तय करने में भूल नहीं करते ! अतः गाँधी, नेहरू दोनों ही राष्ट्रीय राजनीति तथा सुरक्षा की समझ में ऐसे गए-बीते साबित हुए। इस पहाड़ जैसे कटु सत्य को राजकीय प्रचार से थोपी महानता ने छिपा रखा है। इस से हानि यह होती है कि हम उन की गलतियों की न समीक्षा करते हैं, न आगे के लिए कुछ सीखते हैं।

गाँधी के सांगठनिक मॉडल ने कांग्रेस को स्थायी तौर पर अपंग बना दिया। बिना जिम्मेदारी लिए, पीछे से सत्ता चलाना गाँधीजी का ही मॉडल था ! यानी दोहरी सत्ता और 'बैक-सीट ड्राइविंग'। निर्वाचित पार्टी-नेतृत्व एक सत्ता थी, मगर उसे गाँधी नामक अघोषित सत्ता के अनुरूप चलना पड़ता था। जिम्मेदारी लेकर नेतृत्व करने का प्रत्यक्ष रूप ठुकरा कर गाँधीजी ने मनमानी, मगर परोक्ष सत्ता चलाई। उसी से कांग्रेस में अनुत्तरदायी सत्ता की परंपरा बनी जो लगातार जारी है।

नेहरू के बदले पटेल प्रधान मंत्री होते, तो न कश्मीर समस्या होती, न चीन के साथ बैर होता। तिब्बत आज भी पहले जैसा भारत-चीन के बीच मध्यवर्ती स्वतंत्र देश रहता। इस से भारत और चीन की सीमाएं नहीं मिलतीं और सदा की तरह चीन भारत का मित्र रहा होता।

वस्तुतः आज अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत की मित्र-विहीनता नेहरू की ही देन है। क्योंकि स्वतंत्र भारत की विदेश नीति देश-हित को आधार बनाकर नहीं चली। वह काल्पनिक सिद्धातों की पूजा और दूसरों को उपदेश देने से शुरू हुई। यह घोर अज्ञान था। जिस से हमारी स्थिति अकेली और हास्यास्पद हो गई ! नेहरू ने भारत को सोवियत कम्युनिज्म का भोला अनुचर बना दिया। 1962 में कम्युनिस्ट चीन

ने भारत पर हमला कर तमाचा लगाया। अन्यथा नेहरू परम अंधविश्वासी कम्युनिस्ट-सहयोगी थे।

इसीलिए (सरदार पटेल के निधन के बाद) बारह वर्षों तक नेहरू ने बेरोकटोक जो किया, उस से कई हानिकारक परंपराएं हमारे शासकीय वर्ग में जम कर बैठ गई। गाँधी-नेहरू का अंध-गुणगान उन्हीं में एक है। हर राजकीय भवन, योजना, संस्थान आदि का नामकरण गाँधी-नेहरू पर करने की बीमारी कम्युनिस्ट देशों से ली गई है। दूसरे दल भी वही करते हैं। केवल नाम और फोटो बदल जाते हैं।

सरकारी धन से पार्टी-नेता प्रचार किसी लोकतांत्रिक देश में नहीं है। लेकिन स्वतंत्र भारत में यही राजकीय नीति बनी। किस ने किस प्रक्रिया से गाँधी को 'राष्ट्र-पिता' बनाया? हजारों वर्ष पुराने भारत का पिता अस्सी साल पहले जन्मा व्यक्ति हो – यह कैसी विचित्र-बुद्धि थी! मगर उसी से गाँधीजी की समीक्षा को प्रतिबंधित कर दिया गया। नेहरू देहांत के बाद वही नेहरू के लिए भी हो गया। राज-घाट, शांति-वन जैसे बड़े-बड़े मकबरे सरकारी धन से बनाए गए। इस के पीछे मुगलों या कम्युनिस्टों के सिवा किस की नकल थी?

भारत सदैव ईश्वर तथा देवी-देवताओं की पूजा करता रहा है। बड़े-बड़े हिन्दू सम्राटों, ज्ञानियों ने भी अपना या पूर्ववर्तियों का स्मारक, मूर्ति, आदि नहीं बनवाई। तब यह गाँधी-नेहरू पूजा भारत में कहाँ से आई? यह कम्युनिस्ट परंपरा है जो अपने नेता की पूजा करवा कर पार्टी को बल पहुँचाती है। उसी नकल में पार्टी और सरकार को अभिन्न बनाया गया। फिर नेहरू से लेकर शास्त्री, इंदिरा, जगजीवन, आदि कई नेताओं को मिले सरकारी आवासों को भी पारिवारिक स्मारक बना डाला गया। ऐसी जबर्दस्ती और किस देश में है?

यहाँ गाँधी-नेहरू की महानता उसी तकनीक से थोपी गई जैसे कम्युनिस्ट देशों में होती थी। यानी सत्ता-बल से। यदि नियमित राजकीय प्रचार न होता, तो गाँधी-नेहरू का महत्व यहाँ उतना ही होता जैसा राजाजी, राजेन्द्र प्रसाद, शास्त्री, आदि का रहा है। मगर सत्ता और राजकोष के दुरूपयोग से गाँधी-नेहरू को दैवी पद दिया हुआ है, जैसे सोवियत रूस में लेनिन-स्तालिन को था।

आज रूसी जनता के श्रद्धा-पात्रों में लेनिन-स्तालिन का कोई स्थान नहीं। जबरन प्रचार से उनकी महानता दशकों चलती रही थी। हमें आँख खोलकर देखना चाहिए कि यहाँ गाँधी-नेहरू का मामला लगभग वही है। दुर्भाग्यवश उसे खत्म करने के बजाए अब भाजपा अपने 'महान' थोपने में लग गई है। यह विचार-हीनता की पराकाष्ठा है।

साभार-http://www.nayaindia.com/ से